– श्रीराम शर्मा आचार्य

नवयुग का मत्स्यावतार

लेखक

पं. श्रीराम शर्मा आचार्य

प्रकाशक :

युग निर्माण योजना विस्तार ट्रस्ट

गायत्री तपोभूमि, मथुरा

फोन : (०५६५) २५३०१२८, २५३०३९९

मो. ०९९२७०८६२८७, ०९९२७०८६२८९

फैक्स नं०- २५३०२००

पुनरावृत्ति सन् २०११

मूल्य : ६.०० रुपये

तुच्छ को महान बनाने वाली दिव्य सत्ता

ब्रह्मा जी प्रातःकाल संध्या–वंदन के लिए बैठे। चुल्लू में आचमन के लिए पानी लिया। 'उसमें एक छोटा सा कीड़ा विचरते देखा। ब्रह्माजी ने सहज उदारतावश उसे जल भरे कमंडल में छोड़ दिया और अपने क्रिया–कृत्य में लग गए। थोड़े ही समय में वह कीड़ा बढ़कर इतना बड़ा हो गया कि सारा कमंडल ही उससे भर गया। अब उसे अन्यत्र भेजना आवश्यक हो गया। उसे समीपवर्ती तालाब में छोड़ा गया। देखा गया कि वह तालाब भी उस छोटे से कीड़े के विस्तार से भर गया। इतनी तेज प्रगति और विस्तार को देखकर वे स्वयं आश्चर्यचकित हुए और एक दो बार इधर–उधर उठक–पटक करने के बाद उसे समुद्र में पहुँचा आए। आश्चर्य यह कि संसार भर का जल थल क्षेत्र उसी छोटे कीड़े के रूप में उत्पन्न हुई मछली ने घेर लिया।

इतना विस्तार आश्चर्यजनक, अभूतपूर्व, समझ में न आने योग्य था। जीवधारियों की कुछ सीमाएँ, मर्यादाएँ होती हैं, वे उसी के अनुरूप गति पकड़ते हैं, पर यहाँ तो सब कुछ अनुपम था। ब्रह्माजी, जिनने उस मछली की जीवन–रक्षा और सहायता की थी, आश्चर्यचकित रह गए। बुद्धि के काम न देने पर वे उस महामत्स्य से पूछ ही बैठे कि यह सब क्या हो रहा है? मत्स्यावतार ने कहा–मैं जीवधारी दीखता भर हूँ, वस्तुतः परब्रह्म हूँ। इस अनगढ़ संसार को जब भी सुव्यवस्थित करना होता है, तो उस सुविस्तृत कार्य को संपन्न करने के लिए अपनी सत्ता को नियोजित करता हूँ। तभी अवतार प्रयोजन की सिद्धि बन पड़ती है।

ब्रह्मा जी और महामत्स्य आपस में वार्तालाप करते रहे। सृष्टि को नई साज–सज्जा के साथ सुंदर–समुन्नत करने की योजना बनाकर, उस निर्धारण की जिम्मेदारी ब्रह्माजी पर सौंपकर, वे अंतर्धान हो गए और वचन दे गए कि जब कभी अव्यवस्था को व्यवस्था में बदलने की आवश्यकता पड़ेगी, उसे

संपन्न करने के लिए मैं तुम्हारी सहायता करने के लिए अदृश्य रूप में आता रहूँगा।

श्रेय तुम्हें मिलेगा, पर प्रेरणा, योजना और क्षमता मेरी ही कार्य करेगी। जीवधारी तो अपनी क्षमता के अनुरूप थोड़ा ही कुछ कर सकते हैं। असाधारण कार्यों का संपादन तो ब्राह्मी शक्ति ही कर सकती हैं। सो वह महान प्रयोजनों में सहायता करने के लिए हर किसी को, हर कहीं उपलब्ध रहती है। इन्हीं रहस्यमय तथ्यों से तुम्हें तथा अन्यान्य मनीषियों को अवगत कराने के लिए मैंने अद्‌भुत विस्तार करके यह समझाने का प्रयास किया है कि महान प्रयोजन यदि दैवी प्रेरणा से संपन्न किए गए हैं और कर्त्ता ने अपनी प्रामाणिकता–प्रतिभा को अक्षुण्ण रखा है, तो असंभव भी संभव होकर रहता है।

हुआ भी वही। ब्रह्माजी को सृष्टि की सरंचना का काम सौंपा गया। वह उन्होंने यथाक्रम संपन्न कर दिया। अगला चरण यह था कि मनुष्य स्तर के सर्वोच्च प्राणियों में से जो उपयुक्त हों, उन्हें दिव्य चेतना से, दूरदर्शी विवेक से, प्रज्ञा और मेधा से सुसज्जित किया जाए, ताकि वे अपने साथ ही असंख्य अन्यो को भी समुन्नत, सुसंस्कृत बना सकें। इसके लिए वेद–ज्ञान, दिव्य लोक से अवतरित हुआ। ब्रह्माजी की लेखनी ने उसे लेखबद्ध किया। देवमानवों ने उसे पढ़ा, समझा और अपनाया। उस क्रियान्वयन से ही धरती पर स्वर्ग जैसा वातावरण बनाने का सिलसिला चल पड़ा।

तीव्र विस्तार चेतना का स्वभाव

लघु से महान, तुच्छ से विशाल होने में अचंभे जैसा व्यतिक्रम तो मालूम होता है, पर जिस प्रयोजन के पीछे दैवी सत्ता की इच्छा और योजना काम करती है, उसके द्रुतगामी विस्तार में कोई शंका नहीं रह जाती है।

विकासवाद के अनुसार सृष्टि के आरंभ में मात्र एक ''अमीवा'' जैसा अत्यंत छोटा एक कोषीय जीव था, पर जब उस

पर दिव्य प्रेरणा उतरी, तो संकल्पों से ओत–प्रोत हो गया। उसी से विकसित होते–होते सृष्टि में एक दूसरे से सर्वथा भिन्न स्तर के असंख्य जीवधारी बन गए और अपनी आकृति तथा प्रकृति में असाधारण अद्भुतता का परिचय देने लगे। यह चमत्कार अमीवा का नहीं, उसके ऊपर उतरी दिव्य सत्ता के उस प्रवाह का था, जो असंभव को संभव बना देता है।

एक बीज से उत्पन्न पेड़ से विनिर्मित होने वाले हजारों–लाखों बीजों को बोना, उगाना, बढ़ाना संभव हो सके, तो बीज से अगली पीढ़ी अगणित वृक्षों वाले वन्य प्रदेश विनिर्मित कर सकती है। यही सिलसिला बीज की तीसरी–चौथी पीढ़ी तक भी चलता रह सके, तो समझना चाहिए कि आदिकाल जैसी सघन हरितिमा लिए हुए, वन संपदा से समूची धरित्री शोभायमान दीख पड़ने लगेगी। मनुष्य, बीज जैसा विकासक्रम अपनाने वाली कोई वस्तु अपने बलबूते नहीं बना सकता, पर स्त्रष्टा का कर्तृत्व और नियोजन तो इतना अधिक समर्थ है कि उसकी तुलना सामान्य लोक–व्यवहार के आधार पर चलने वाले क्रिया–कलापों से हो ही नहीं सकती। बादलों के बरसने, वसंत के पुष्प–पल्लवों से सुसज्जित होने की प्रक्रिया मनुष्य अपने बलबूते नहीं कर सकता। ऋतुओं का क्रमबद्ध परिवर्तन भी मनुष्य अपनी इच्छानुसार नहीं कर सकता, किंतु उस दिव्य सत्ता के लिए यह सहज ही संभव है, जो–''एकोऽहम् बहुस्याम्'' के संकल्प मात्र से, समूची प्रकृति–संपदा को दिव्य–विभूतियों से भर कर विनिर्मित, सुसज्जित और गतिशील बना देती हैं। हर एक युग के संधिकाल में उस दिव्य सत्ता ने अपनी इस तीव्र प्रक्रिया के अनेक उदाहरण प्रस्तुत किए हैं।

उसी धारा में प्रस्तुत एक उदाहरण

ऐसा ही एक उदाहरण इन दिनों भी प्रकट है और अपने आश्चर्यजनक विस्तार से हर किसी को चकित कर रहा है। यह है–''अपने समय का मत्स्यावतार'' अथवा इसे युग परिवर्तन

का सुनियोजन भी कह सकते हैं। इसमें टूटे खंडहरों की सफाई और उसके स्थान पर भव्य भवनों का निर्माण एक साथ होना है।

सामान्यतया अपने लिए अपना अच्छा घर बना लेने जैसा छोटा सा मनोरथ पूरा करने में भी इच्छुक और उत्सुक रहते हुए भी असंख्य लोग सफल नहीं हो पाते, फिर मनुष्य समुदाय का उस पर छाए अनौचित्य का परिशोधन कितना बड़ा काम हो सकता है, उसकी कल्पना करने भर से सिर चकराता है। इसी में एक कड़ी और भी जुड़ती है कि अनौचित्य के परिशोधन के साथ–साथ देव–संस्कृति के अनुरूप, अभिनव भावना क्षेत्र में अभिनव सरंचना भी की जानी है। उस दुहरे क्रिया–कलाप का दायित्व उठाने के लिए किसी व्यक्ति या छोटे संगठन द्वारा साहस किए जाने की बात गले ही नहीं उतरती। उसे दिवास्वप्न कहकर उसका उपहास भी उड़ाया जा सकता है। किसी पगले की सनक भी कहा जा सकता है, पर यदि वस्तुस्थिति पर नए सिरे से विचार किया जाए और अनुमान लगाया जाए कि यदि इस योजना के पीछे दैवीशक्ति काम कर रही होगी, तो योजना असफल होकर क्यों रहेगी? आकाश में सूर्य, चंद्र और तारे टाँग देने वाली सत्ता–अग्नि, जल, पवन जैसे तत्वों से इस निर्जीव धरातल को हलचलों से भरा पूरा बना देने वाला सृजेता अपनी अत्यधिक बड़ी और कठिन दीखने वाली योजनाओं को क्यों संभव नहीं बना सकता? जिसकी सरंचना जल, थल और आकाश के स्तर को अद्‌भुत बनाए हुए है, उसके क्रिया–कौशल द्वारा क्या कुछ संभव नहीं हो सकता?

युग परिवर्तन जैसे अत्यंत दुरूह और व्यापक स्तर के निर्धारण में मनुष्य की सीमित शक्ति असमर्थ और असफल भी रह सकती है, पर यदि वही क्रिया–कलाप स्रष्टा के तत्वावधान में चल रहे हो, तो फिर उसमें असफल रह जाने की आशंका करने में कोई तुक नहीं। अवतार शृंखला में अनेकानेक अवसरों

पर ऐसी ही उलट–पुलट होती रही है, जिन्हें सामान्य नहीं असामान्य ही कहा जाएगा। मत्स्यावतार का ऊपर उल्लेख हो चुका है। कच्छपावतार ने अपनी पीठ पर समुद्र–मंथन की भारी–भरकम योजना लादी थी, उस प्रयोग के द्वारा उन चौदह रत्नों को समुद्र से ऊपर उभारकर दिखाया था, जिन पर आज तो विश्वास कर सकना तक नहीं बन पड़ता। परशुराम ने संसार भर का ब्रेन वासिंग किया था, मस्तिष्क पर छाई हुई अवाँछनीयताओं को पूरी तरह कतर–ब्यौंत करके रख दिया था। परशुराम के विचार–क्रांति के उस कुल्हाड़े ने महाबली सहस्त्रबाहु तक के अवरोधों को धूलि चटा दी थी।

असुरों का केंद्र बनी लंका का पराभव और उन्हीं दिनों राम–राज्य के रूप में सतयुग की वापसी का नियोजन, क्या दो राजकुमार और मुट्ठी भर रीछ वानर संपन्न कर सकते थे? इसको व्यवहार की रीति–नीति के आधार पर नहीं समझाया जा सकता। पाँच पांडवों द्वारा कौरवों की अक्षौहिणी सेना को निरस्त किया जाना क्या मनुष्य कृत रीति–नीति के आधार पर संभव माना जा सकता है? वासुदेव का व्यक्तित्व और असाधारण योजना नीति महाभारत जैसी विशाल योजना को पूरी करके दिखा दे, इस पर सामान्य बुद्धि तो अविश्वास ही करती रहेगी? समाधान उन्हीं का हो सकेगा, जो दैवी शक्ति की महान महत्ता पर विश्वास कर सकें। बुद्ध जैसे गृहत्यागी, वनवासी, तपस्वी, विश्वव्यापी धर्मचक्र प्रवर्तन के लिए आवश्यक जनशक्ति और साधन–शक्ति कैसे जुटा सकते थे? जो उनसे बन पड़ा, उसका मानवी पुरुषार्थ द्वारा बन पड़ना संभव नहीं हो सकता। तक्षशिला और नालंदा विश्वविद्यालय जैसी महान संस्थापना और संचालन सिद्धार्थ नाम का एक व्यक्ति ही कर सकता था? यदि हाँ तो वैसा उदाहरण प्रस्तुत करके दिखा देने के लिए और कोई आगे क्यों नहीं आता?

एक बंदर द्वारा समुद्र छलाँग जाना, लंका जैसे सुदृढ़

दुर्ग को धराशायी बनाना, पर्वत समेत संजीवनी बूटी को अपने कंधे पर लाद लाना, क्या सामान्य शरीरधारियों के बलबूते की बात है? गाँधी, शंकराचार्य, विनोबा, विवेकानंद जैसों के कर्तृत्व भी ऐसे ही मानने पड़ते हैं। जिन्हें अलौकिक मानकर ही अविश्वास को विश्वास स्तर पर लौटा लाना संभव हो सकता है। जिनके राज्य में कभी सूर्य अस्त नहीं होता था, उस ब्रिटिश साम्राज्य को अपना बिस्तर गोल करने के लिए विवश कर देना मुट्ठी भर सत्याग्रहियों के लिए कैसे संभव हो सका? जबकि नादिरशाह, तैमूरलंग, चंगेजखाँ जैसे सामान्य से आक्रांता अपने सीमित साधनों से भारत जैसे विशाल देश पर मुद्दतों, लूट–पाट करते आए और दिल दहलाने वाला शासन करते रहे। यदि पुरुषार्थ ही सब कुछ रहा होता, तो शताब्दियों तक भारत को इतने निविड़ पराधीनता पाश में न बँधा रहना पड़ता। बहादुर बलिदानी और देश भक्त, तो उस समय भी थे, पर गाँधी के असहयोग आंदोलन से घबराकर असामान्य शक्तिशाली और साधन संपन्न साम्राज्य का उलटे पैरों वापस लौट जाना एक आश्चर्य की बात है। उसमें मानवी पुरुषार्थ कितना ही क्यों न लगा हो, पर दिव्य सत्ता द्वारा प्रतिकूलता को अनुकूलता में बदल दिए जाने वाली बात से भी एकदम इनकार नहीं किया जा सकता।

सतयुग कालीन, साधन रहित ऋषि–मनीषियों द्वारा अजस्र अनुदान प्रदान करके, इस सुविस्तृत संसार में समृद्धि और सुसंस्कारिता का वातावरण बना देना, किस नियम के आधार पर संभव हो सका, यह तर्क बुद्धि के आधार पर समझना और समझाना संभव हो सकता। इक्कीसवीं सदी के उज्ज्वल भविष्य वाले गंगावतरण की परिकल्पना और संभावना इसी आधार पर गले उतरती है कि उसके पीछे कोई अदृश्य सत्ता काम कर रही है, अन्यथा इस समय के असुरत्व को देवत्व में बदल देने और विश्वव्यापी कायाकल्प पर कैसे विश्वास किया जा सकेगा? जब

नदी का प्रवाह उलट देना एक प्रकार से असंभव माना जाता है, तो प्रचलनों और परंपराओं के रूप में जड़ जमाए बैठी अवाँछनीयता के अंधड़ को उलट कर विपरीत दिशा में लौट पड़ने के लिए बाधित किया जाना, निश्चय ही मानवी प्रयत्नों के आधार पर न तो स्वयं समझा जा सकता है और न दूसरों को समझाने–सहमत करने में ही सफलता मिल सकती है। इन प्रयोगों में समर्थ सत्ता का हस्तक्षेप होने की मान्यता अपनानी ही पड़ती है, अन्यथा प्रतिपादन को लोक मान्यता मिल सकना प्रायः असंभव ही रहेगा। व्यक्ति विशेष अथवा छोटे संगठन तो अपनी पहुंच के अंतर्गत छोटा–मोटा, सुधार परिष्कार ही कर सकते हैं।

अदृश्य चेतना द्वारा सूत्र–संचालन

इक्कीसवीं सदी के गंगावतरण और नवयुग के मत्स्यावतार के स्वरूप और विस्तार को देखते हुए इसी निष्कर्ष पर पहुँचना पड़ता है कि इतनी बड़ी योजना को संपन्न कर सकना मानवी पुरुषार्थ की परिधि से बाहर है। फिर इतने बड़े आंदोलन–अभियान–उद्घोष–प्रतिपादन को सर्वसाधारण के सम्मुख प्रस्तुत करने का दुस्साहस किस आधार पर किया जा रहा है?

शांतिकुंज और उसके सूत्र–संचालक अपनी अयोग्यता, असमर्थता और साधनों की न्यूनता से भली प्रकार परिचित होते हुए भी, किस आधार पर युग परिवर्तन के महाप्रयाण में झंडा–वरदार बनकर आगे–आगे चल रहे हैं इसके उत्तर में, उस विश्वास को ही साक्षी रूप में प्रस्तुत किया जा रहा है, जिसकी सुनिश्चित परिपक्वता अनेक प्रयोग परीक्षणों के उपरांत ही बन पड़ी है। निराधार कल्पनाएँ करना और अपनी सामर्थ्य के बाहर का भार उठाने की भूल तो कोई अर्धविक्षिप्त सनकी ही कर सकते हैं, यह लाँछन स्वीकारने की हिम्मत भी उस संचालक तंत्र में नहीं है, क्योंकि जो मान्यता बनाई गई है, वह मात्र कल्पना पर आधारित नहीं है। तर्कों, तथ्यों, प्रमाणों, उदाहरणों

का एक बड़ा अंबार भी प्रयासों को प्रोत्साहित करने के लिए विद्यमान है। पिछले दिनों जो कदम उठे और प्रयास बने, वे कितने आश्चर्यजनक रीति से सफल–संपन्न हुए, उनकी कथा–गाथा ऐसी है, जिसे कथा–कहानी की तरह संशयग्रस्त नहीं माना जा सकता। जो बन पड़ा है, उसका जो परिणाम निकला है, उसकी जाँच–पड़ताल करने के लिए हर किसी के लिए द्वार खुला पड़ा है। पिछली लंबी अवधि की गतिविधियों और उपलब्धियों को उलट–पुलट कर यही निष्कर्ष निकलता है कि वर्तमान दृश्य तंत्र, प्रचलनों और अनुभवों के आधार पर किसी शरीरधारी नगण्य व्यक्ति को श्रेय देने के लिए कोई तैयार नहीं हो सकता। समाधान मात्र उन्हीं का होगा, जो यह अनुभव कर सकेंगे कि उस समूचे प्रयास या प्रवाह के पीछे अदृश्य सत्ता काम कर रही है।

असंख्य प्रसंगों में से यहाँ कुछेक का उल्लेख कर देना,बटलोई में पकते भात में से कुछ चावल निकाल कर, पकने न पकने की बात जाँचने की तरह पर्याप्त हो सकता है।

१–अखंड ज्योति पत्रिका का तथा उसकी सहेलियाँ प्रायः साढ़े आठ लाख में छपना। उस साहित्य का अनेक भाषा–भाषियों द्वारा अत्यंत श्रद्धापूर्वक पढ़ा जाना। पत्रिका के सदस्यों द्वारा पाँच विचारशीलों को उनका पढ़ाया जाना और इस प्रकार उनके वाचन–श्रवण के अतिरिक्त प्रेरणाओं को जीवनचर्या में उतारना। इस प्रकार एक करोड़ विचारशीलों का परिकर जुट जाना। यह सब ऐसी दशा में और भी कठिन पड़ता है कि इस समूचे तंत्र को खड़ा करने में एक ही व्यक्ति की क्रिया–प्रतिक्रिया काम करती दीखती है।

२–युग साहित्य के रूप में प्रायः तीन हजार छोटी–बड़ी पुस्तकों का लिखा जाना, कई–कई संस्करण उनके प्रकाशित होना, घर–घर पहुँचाना और अनेक भाषाओं में उनका अनुवाद होना। जो कार्य विद्वानों की मंडली और संपत्तिवानों के सहयोग

से भी कठिन था, वह सामान्यजनों–सामान्य साधनों के सहारे पूरा हो जाना।

३–प्रज्ञापीठों के रूप में देश के कोने–कोने में प्रायः पाँच हजार से अधिक इमारतों का विनिर्मित होना और उनके तंत्रियों द्वारा, अपने–अपने क्षेत्रों में नवसृजन के क्रिया–कलापों को क्रियान्वित करते रहना। सीमित समय में, सामान्य जनता के योगदान से एक ही उद्देश्य के लिए इतना विशाल तंत्र खड़ा हो जाना–इतिहास की एक अनुपम घटना कही जाती है।

४–अब तक प्रायः ऐसे असंख्य समारोहों का उत्साह भरे वातावरण में संपन्न होना। जिनमें धर्मतंत्र के माध्यम से लोक शिक्षण की उच्चस्तरीय प्रेरणा संचरित की गई। उस संचार द्वारा अगणित व्यक्तियों को पतन–पराभव के चंगुल से निकाल कर उन्हें प्रगति–पथ पर चला देने में सफलता प्राप्त होना।

५–युग संधि महापुरश्चरण के माध्यम से लोक–मानस में नव–सृजन का उल्लास उभारना और लाखों व्यक्तियों का उसमें सम्मिलित होना। वर्ग भेद भुलाकर हर क्षेत्र, हर भाषा, हर स्तर के व्यक्ति का इस महान प्रयोग में निष्ठापूर्वक जुट जाना।

६–युग संधि के अगले दस वर्षों में दस लाख सृजन शिल्पी उभारना, प्रशिक्षित करना और कार्य क्षेत्र में उतारना। उसे प्राचीन काल के साधु, ब्राह्मण वानप्रस्थ, परिव्राजक स्तर के प्रचलन को पुनर्जीवित किया जाना भी कहा जा सकता है। प्रयत्न तेजी से चल रहे हैं और उस लक्ष्य की ओर तेजी से बढ़ा जा रहा है। करोड़ों विचारशीलों को समर्थक–सहयोगी बनाना एवं पूर्णाहुति के अवसर पर एकत्रित करना।

७–विज्ञान और अध्यात्म के समन्वय के लिए ब्रह्मवर्चस् शोध संस्थान के उन आविष्कारों को प्रस्तुत करना, जो अगले दिनों लोगों को नई प्रेरणा एवं नई दिशा दे सकते हैं।

८–प्रकाशन, प्रचार एवं संगठन के लिए युग निर्माण

योजना, गायत्री तपोभूमि, तंत्र का अनवरत रूप से तत्पर रहना। अनेक भाषाओं में युग साहित्य का प्रकाशन करना और लागत मूल्य में घर–घर पहुँचाना।

इन प्रयासों की क्या परिणति एवं क्या प्रतिक्रिया हुई? इसका विवरण इतना असाधारण है कि जिनका भी इस तंत्र के साथ निकटवर्ती संबंध है, वे एक स्वर से प्रशंसा करते नहीं थकते। यह विवरण प्रकाशित करने की इसलिए आवश्यकता नहीं समझी गई कि विज्ञापनबाजी से सदैव दूर रहने की नीति इस तंत्र द्वारा अपनाई गई है। अपनी शक्ति का कण–कण केवल सृजन प्रयोजनों में लगाने के उद्देश्य से ऐसा करना आवश्यक समझा गया है।

सत्प्रवृत्ति संवर्धन के अंतर्गत अनेक ऐसे क्रिया–कलाप रह सकते हैं, जिन्हें नव सृजन की ठोस एवं सुदृढ़ आधारशिला समझा जा सकता है। इस प्रयास का पूरक है–दुष्प्रवृत्ति उन्मूलन, जिसमें कुरीतियों मूढ़मान्यताओं, अंधविश्वासों, अवाँछनीयताओं से संबंधित क्रिया–कलाप आते हैं, उनका उन्मूलन किया ही जाना चाहिए। धूम–धामवाली और जेवर–प्रदर्शन के कारण भार–भूत बन कर रह रहीं खर्चीली शादियाँ, नशेबाजी, विचारों की दुष्टता और आचरणों की भ्रष्टता जैसी अनेकों कुप्रथाएँ गिनी और गिनाई जा सकती हैं। जाति–पाँति के नाम पर बरती जाने वाली ऊँच–नीच, भिक्षा–व्यवसाय, पर्दा–प्रथा जैसी कुरीतियों का खुलकर विरोध किया जा रहा है। इन दिनों दोनों की दिशाधाराओं में संबंधित प्रौढ़ शिक्षा, वृक्षारोपण, स्वास्थ्य–संवर्धन, नारी जागरण आदि कितने ही प्रयास गिनाए जा सकते हैं, जो अखंड ज्योति परिजनों द्वारा नित्यकर्म जैसी दिनचर्या में सम्मिलित किए हुए हैं।

उपरोक्त विवरण में नमूने की बानगी जैसी जानकारियाँ हैं। इन क्रिया–कृत्यों की उपयोगिता देखते हुए, शांतिकुंज में लोकसेवी–परमार्थपरायण कार्यकर्त्ता मिशन के प्रयोजन को पूरा

करने के लिए स्थाई निवास करते हैं। इनमें से अधिकाँश उच्च शिक्षित, व्यक्तित्ववाँन एवं अपनी प्रामाणिकता से संपर्क में आने वाले को निरंतर प्रभावित करते रहने में सक्षम हैं।

इन गिनाई जा सकने वाली उपलब्धियों के सूत्र संचालक ने यह विश्वास दिलाया है कि यह मात्र मानवी पुरुषार्थ के सहारे बन पड़ने वाली उपलब्धियाँ नहीं है। इनके पीछे वह अदृश्य चेतना महती भूमिका निभा रही है, जिसे युग परिवर्तन के लिए उपयुक्त वातावरण बनाना,,सरंजाम जुटाना एवं भविष्य के लिए महत्वपूर्ण ताना–बाना बुनना है। मिशन की इमारतों में, बहुसंख्यक शिक्षार्थी एवं भोजनालय में एक हजार से अधिक की रसोई बनती रहने, प्रशिक्षण, लेखन तथा शोधकार्य चलते रहने की गतिविधियों को देखते हुए यही निष्कर्ष निकलता है कि इतने बड़े तंत्र के संचालन में सामान्य स्तर के किसी व्यक्ति विशेष की योजना एवं पुरुषार्थ परायणता कारगर नहीं हो सकती। एक हजार प्रतिदिन का पत्राचार चलना, उसके माध्यम से दूरवर्ती लोगों तक वही प्रेरणाएँ पहुँचाना, जो हरिद्वार आने पर ही दी जा सकती हैं, यह पत्राचार विद्यालय, लोक–सेवियों का प्रशिक्षण, साहित्य सृजन ऐसा छोटा कार्य नहीं है, जिसे इतने सुनियोजित उपक्रम के साथ कोई ऐसा व्यक्ति कर सके, जिसे हर दृष्टि से सामान्य ही कहा जा सकता है।

अध्यात्म क्षेत्र के वे प्रयोग, अनुभव और तप साधना इस सब के अतिरिक्त हैं, जो अंतःकरण को पवित्र करने और उसमें दैवी प्रेरणा के अवतरित होने के लिए पथ–प्रशस्त करते हैं। इन उल्लेखों में निजी समाधानों की चर्चा नहीं है, जिसके आधार पर व्यक्ति कठिनाइयों से उबरने और उज्ज्वल–भविष्य की संभावनाओं को साकार करने के लिए अतीद्रिंय क्षमताओं को उभारते एवं दिव्य प्राण–चेतना का संचार करते हैं।

पिछले दिनों की उपलब्धियों का यही है–सार–संक्षेप, जिसकी सीमित और संक्षिप्त जानकारी के, प्रस्तुत विवरण को

देखते हुए यह नहीं कहा जा सकता है कि यह सब मानवी पुरुषार्थ पर निर्भर हो सकता है। प्रमाणों के आधार पर उत्पन्न हुए विश्वास ने यह साहस प्रदान किया है कि जिस अदृश्य शक्ति की अनुकंपा से इतना बन पड़ा है, बन पड़ रहा है, उसका अनुग्रह एवं सहयोग आगे भी मिलता रहेगा। वे सभी भावी निर्धारण पूरे होकर रहेंगे, जिन्हें अगले दिनों क्रियान्वित किया जाना है और महान परिवर्तन को लक्ष्य तक पहुँचाया जाना है।

बड़े प्रयोजन के लिए बड़े कदम

चुल्लू भर जल में से उत्पन्न हुआ मत्स्यावतार, विराट विश्व पर छा जाने और अंतर्धान होने तक एक ही रटन, एक ही ललक सँजोए रहा—विस्तार—विस्तार—विस्तार। यही आकाँक्षा युग चेतना के रूप में अवतरित हुए आज के प्रज्ञावतार आंदोलन की है। उसे सुविस्तृत हुए बिना चैन नहीं। अल्पमत को सदा हारती हुई पाली में बैठना पड़ा है। शासन सत्ता तक पर अधिकार जमाने में केवल बहुमत ही सफल होता है। नरक उसी वातावरण को कहते हैं, जिसमें पिछड़े, प्रतिगामी और उद्दंडों का बाहुल्य होता है। स्वर्ग और कुछ नहीं मात्र सज्जनों की, सत्प्रवृत्तियों की बहुलता उपलब्ध कर लेने की स्थिति भर है। सतयुग की बहुत सराहना की जाती रही है। उसमें एक ही विशेषता थी कि जन समुदाय का बहुमत, श्रेष्ठता और शालीनता से भरा—पूरा था। कलियुग के नाम पर इसलिए नाक—भौंह सिकोड़ी जाती है कि उसमें दुर्जनों की, दुष्प्रवृत्तियों की बहुलता पाई जाती है। श्रेष्ठता के अभिवर्धन बिना संसार में सुख—शांति का वातावरण बन ही नहीं सकता। प्रतिगामिता की पक्षधर दुष्टता, भ्रष्टता का जितना भी विस्तार होगा, उतना ही पतन—पराभव प्रबल होता और अनेकानेक विपत्तियाँ, विभीषिकाएं विनिर्मित करता चला जाएगा।

सर्वप्रथम अवतरित हुए मत्स्यावतार का एक ही उद्देश्य था कि श्रेष्ठता इतनी अधिक बलिष्ठ और सुविस्तृत हो कि

संसार का कहीं कोई कोना भी उसके प्रभाव क्षेत्र से बाहर न रह जाए। युग परिवर्तन की, उज्ज्वल भविष्य की सरंचना का लक्ष्य भी यही है। सज्जनता न केवल अकेली हो, वरन् सुविस्तृत भी होती चले। इसी प्रयास में सृजन चेतना अपनी समर्थता समेट कर प्राण–पण से संलग्न रह रही है।

चुल्लू भर पानी में उत्पन्न हुई मछली, अखंड–ज्योति पत्रिका को समझा जा सकता है। उसे उलट–पुलट कर देखने पर तो छपे कागजों का एक छोटा सा पैकिट भर ही समझा जा सकेगा और उसका प्रभाव विद्या–व्यसनियों का मनोरंजन, समय क्षेप भर समझा जा सकता है, पर वस्तुतः बात इतनी छोटी है नहीं। कारण कि छपे कागज पढ़ते रहने वालों की जानकारी भर बढ़ सकती है। यह संभव नहीं कि इतने भर से उनकी उत्कृष्टता अनवरत रूप से समुन्नत होती चली जाए। यह अखंड ज्योति ही है, जिसने अपने पाठकों को एक विशेष स्तर तक समुन्नत करने में सफलता पाई है। यह परिकर अपनी विशेषता का परिचय, चिंतन, चरित्र और व्यवहार में निरंतर देता चला आया है। विगत आधी शताब्दी से वट वृक्ष की तरह उसकी गरिमा हर दृष्टि से समुन्नत, सुविस्तृत ही होती चली आई है।

यह कैसे संभव हुआ? इसका श्रेय उस अदृश्य ऊर्जा को ही जाता है, जो अपने लिए उपयुक्त एक केंद्र विशेष पर अवतरित होती और अपनी गरिमा के आंचल में आश्चर्यजनक रीति से लाखों को समेटती चली जाती है। वही करोड़ों को अपनी छत्र–छाया में शांति और प्रगति से लाभान्वित होने के लिए आमंत्रित करने का दुस्साहस जैसा उपक्रम अत्यंत उत्साहपूर्वक सँजोती और क्रियान्वित करती चली जाती है।

पिछले पृष्ठों पर इस मिशन द्वारा जनमानस के परिष्कार एवं सत्प्रवृत्ति संवर्धन से संबंधित अनेकानेक क्रिया–कलापों का न्यूनतम परिचय प्रस्तुत किया गया है। जो कुछ बन पड़ा या

प्रकाश में आया है, उसे किसी व्यक्ति विशेष का वर्चस्व या कर्तृत्व नहीं माना जा सकता। तत्वतः यह अखंड ज्योति परिवार के सदस्यों, घटकों का सामूहिक पुरुषार्थ–अनुदान है। व्यक्ति विशेष के लिए इतना कुछ कर दिखाना एक प्रकार से असंभव ही समझा जा सकता है।

श्रेय यदि मत्स्यावतार, प्रज्ञावतार को देना हो, तो इसी बात को यों भी समझा जा सकता है कि टेलीविजन के बोलते दृश्य चित्रों का उच्चारण–प्रसारण किसी एक विशेष केंद्र से होता है। उसे सशक्त एवं व्यापक बनाने हेतु ट्रांसमीटर उन तरंगों को फैलाते हैं और फिर उसी प्रेरणा–संवेदना को असंख्यों टी. वी. पकड़ या बना लेते हैं और वही सब दिखाने लगते हैं, जो उद्गम स्टेशन में बना या चल रहा था। सतयुग के संचालक सूत्र भी यही करते थे। उन दिनों उत्कृष्टता को लोक व्यवहार में उतारने के लिए अनेक देव मानव, अपना सृजन–प्रयास एक से एक बढ़कर अधिक सशक्त सिद्ध करने के लिए उत्साह भरी स्पर्धा जुटाए रहते थे। इतने भर से समूचा वातावरण और जन समुदाय उत्कृष्टता से अनुप्राणित हो जाता था और ऐसी परिस्थितियाँ बनती थीं, जिन्हें स्वर्गोपम कहने–मानने में किसी को कोई असमंजस नहीं होना चाहिए।

नए लक्ष्य–नए उद्घोष

अब फिर उसी पुराने–स्वर्णिम काल का अभिनव संस्करण प्रस्तुत हो रहा है। सूत्र संचालक तो कोई शक्ति ही हो सकती है, पर उस उदीयमान अरुणोदय के प्रभाव से, दिशाओं से लेकर विद्याओं और वस्तुओं तक अपने को सुनहरी आभा से आच्छादित अनुभव कर रही हैं। बात को और भी स्पष्ट करना हो, तो यों भी कहा और समझा जा सकता है कि सृजन की प्रारंभिक ऊर्जा अखंड ज्योति के रूप में अवतरित हुई है। वह अपने सूत्रों के साथ जुड़े हुए अनेक घटकों, पाठकों को तदनुरूप बढ़ने–ढलने के लिए बाधित एवं अनुप्राणित कर रही है। २१ वीं

सदी उज्ज्वल भविष्य का नारा इसी परिकर से उठा और दिग्–दिगंत में प्रतिध्वनित हुआ है। "नया इंसान बनाएँगे, नया संसार बसाएँगे, नया भगवान उतारेंगे" के उद्घोष किसी आवेशग्रस्त केंद्र से ही उभर सकते हैं, अन्यथा साधारण जनता के लिए तो ऐसी दावेदारी "सनक" के अतिरिक्त और कुछ क्या कही–समझी जा सकती है?

विवेचना भर पर्याप्त नहीं, सोचना उस विस्तरण के संबंध में भी पड़ेगा, जो मत्स्यावतार का, प्रज्ञावतार का प्रमुख लक्ष्य रहा है। समुदाय जितना विस्तृत और जितना समुन्नत होगा, उसे उतना ही प्रखर, सशक्त एवं सक्षम स्तर का कहा जा सकेगा। अपना परिवार अभी स्थिति और आवश्यकता के अनुपात से बहुत छोटा है। ९० करोड़ की आबादी वाले भारत का, ६०० करोड़ आबादी वाले संसार का काया–कल्प जैसा पुरुषार्थ कर दिखाने के लिए मात्र एक करोड़ लोगों का समुदाय जलते तवे पर एक बूँद पानी की तरह नगण्य ही कहा जा सकता है। भयंकर अग्निकांड के शमन में समर्थ फायर बिग्रेडों की टीम ही अभीष्ट शांति की स्थापना में समर्थ हो सकती हैं। बड़े प्रतिफल पाने के लिए बड़े साधन भी तो चाहिए। बड़े मोर्चे फतह करने के लिए सैन्य दल का विस्तार करने और उनके क्रिया–कौशल बढ़ाने के अतिरिक्त और कोई विकल्प नहीं। साधनों को तो मनुष्य के संकल्प बल का चुंबकत्व कहीं से भी खींच–घसीट लेता है।

मिशन की पत्रिकाओं के पाठक पच्चीस लाख हैं। उस छोटी मंडली द्वारा युग का गोवर्धन उठेगा नहीं। संख्या और क्षमता अनेक गुनी बढ़ाने की आवश्यकता है। संसार भर की सैन्य शक्ति एक करोड़ सैनिकों से कम नहीं, जिनका काम लड़ना भर है, पर जिन्हें सृजन–प्रयोजन वहन करना पड़े, उनकी संख्या एवं क्षमता तो और भी अधिक होनी चाहिए। लक्ष्य और उसकी उपलब्धि को ध्यान में रखते हुए संतुलन तभी

बैठता है, जब संसार में उतने सृजन–शिल्पी तो चाहिए ही, जितने कि सैनिक साज–सज्जा के साथ छावनियों में रहते हैं। सृजन शिल्पियों की संख्या एक करोड़ तक जा पहुँचे, तो समझना चाहिए कि ''नया संसार बसाने'' की योजना का उपयुक्त आधार खड़ा हो गया।

दूर से देखने वालों को यह कार्य असंभव जैसा दिख तो सकता है, पर बात ऐसी है नहीं। साधनहीन अखंड ज्योति पत्रिका बिना विज्ञापन छापी जा भी सकेगी? यह संदेह सभी करते थे। पूजा–पाठ के आधार पर खड़ा किया गया छोटा सा संगठन, किसी दिन जनमानस की कठिनतम समस्याओं के समाधान की स्थिति में जा पहुँचेगा, इसकी किसी को कल्पना भी नहीं थी, पर चेतना का चक्र घूमता है, तो अपने गर्भ में सँजोए हुए हर संकल्प को प्रत्यक्ष कर ही दिखाता है। सृजन शिल्पियों का प्रचुर संख्या में उत्पादन भी इसी चेतना चक्र के गतिचक्र का एक चरण है, जो पूरा होकर ही रहेगा। अपने लक्ष्य तक पहुँचकर ही विश्राम लेगा।

बड़े काम भी प्रायः छोटे बीज के रूप में ही बढ़ते और क्रमशः विस्तार करते हुए, वर्षा के बादलों की तरह सुविस्तृत आकाश पर छा जाने की सफलता प्राप्त करते हैं। आरंभ में अखंड ज्योति का प्रथम अंक ५०० की संख्या में छपा था। बाद में वह युग की आवश्यकता का पक्षधर सिद्ध होने के कारण, मानवी–गौरव गरिमा द्वारा मान्यता मिलने पर सहज विस्तार की गति पकड़ता गया और अब इतना विस्तार कर सका, जिसे अपनी शैली के क्षेत्र में अनुपम एवं अद्‌भुत ही कहा जा सकता है। क्या आगे यह प्रगति क्रम रुक जाएगा? क्या लंबी मंजिल पार करने का लक्ष्य बनाकर चलने वाला कारवाँ कुछ मील पर ही थक कर आगे न चल सकने की असमर्थता प्रकट करने पर पैर पसार देगा? आशंका ऐसी ही दीखने पर भी, किसी को यह विश्वास नहीं करना चाहिए कि जिस समर्थ सत्ता ने यह सरंजाम

जुटाया है, वह पानी के बबूले की तरह अपने उत्साह का समापन कर बैठेगा। यह विस्तार क्रम रुकने वाला ही नहीं है। नियति के निर्धारण पूरे होकर ही रहेंगे।

समय की माँग के अनुरूप पुरुषार्थ

युग संधि की इस बेला में वातावरण क्रमशः अधिक गरम होता जा रहा है। सृजन–शिल्पियों का उत्साह, साहस और पुरुषार्थ किसी सशक्त फव्वारे की तरह उछल और मचल रहा है। निर्धारित गतिविधियाँ तीव्र से तीव्रतम होती जा रही हैं। ऐसी दशा में विस्तार का आरंभिक तंत्र भी बहुत गति से अग्रसर होना चाहिए। अखंड ज्योति परिजनों की संख्या बढ़ने का क्रम रुकना नहीं चाहिए। उसे संबद्धजनों को रुकने भी नहीं देना चाहिए। इस दिशा में इस वर्ष का सीमित लक्ष्य यह है कि एक से पाँच, पाँच से पच्चीस बनने वाली गुणन अभिवर्द्धन प्रक्रिया में कहीं कोई व्यवधान पड़ना नहीं चाहिए।

अखंड ज्योति के पाठक इस परंपरा को निष्ठापूर्वक निभाते रहे हैं। पहुँचने वाला हर अंक कम से कम पाँच लोगों द्वारा पढ़ा जाता रहे। इसी आधार पर तो पाँच लाख के परिकर को अनुपाठकों समेत पच्चीस लाख गिना और अपने परिकर को इतना बड़ा कहा, माना और समझा जाता है। अब एक ऊँची छलाँग लगाने का दूसरा सोपान, नई चुनौती लेकर सामने आ खड़ा हुआ है। एक से पाँच का सिलसिला मुद्दतों से चलता रहा है। अब पाँच को पच्चीस होना चाहिए। वे अनुपाठक जो दूसरों से माँगकर अपनी जिज्ञासा शांत करते रहे हैं, अब उन्हें बचपन वाली सहायता पर निर्भर रहने की प्रकृति छोड़नी चाहिए और तरुणों जैसी वह रीति–नीति अपनानी चाहिए, जिसमें देना और बढ़ाना ही कर्तव्य बन कर लद पड़ता है और बढ़े–चढ़े पुरुषार्थ की अपेक्षा करता है।

एक सदस्य पाँच अनुपाठकों की सहायता करता है। अब अनुपाठकों को एक कदम बढ़ाकर सघन आत्मीयता बनाने

के अनुबंध में बँधना चाहिए। स्वयं पूर्ण सदस्य बनना चाहिए और अपनी–अपनी पत्रिका के पाँच–पाँच अनुपाठक बनाकर पाँच से पच्चीस वाला विस्तार क्रम पूरा कर दिखाना चाहिए। इन दिनों अखंड ज्योति का हर सदस्य और चार नए सदस्य बनाकर अपनी मंडली पाँच की गठित करें। इससे अनुपाठक तो पच्चीस सहज ही हो जाएँगे। इस अभिनव विस्तार के चरण को एक नियमित प्रज्ञा मंडल का गठन ही कह सकते हैं। पाँच सदस्य इस प्रकार चार–चार नए साथी बनाकर पच्चीस की मंडली के सूत्र संचालक बन सकते हैं। आज के सदस्य कल स्वयं ही एक प्रज्ञा मंडल के जन्मदाता कहलाने लगेंगे। इतने भर से मिशन एक ही छलाँग में, एक ही वर्ष में अपना पाँच गुना विस्तार कर लेगा और अब तक जिस क्रम से सृजन संकल्प पूरा होता रहा है, उसकी तुलना में अगले ही दिनों विकास उपक्रम में पाँच गुनी अभिवृद्धि हो जाएगी।

इसी बात को दूसरे शब्दों में यों भी कहा जा सकता है कि जिस गति से पिछले दिनों गतिशीलता का उपक्रम रहा है, उसकी तुलना में अगले दिनों प्रगति का अनुपात पाँच गुना अधिक बढ़ जाएगा। वह सब कार्य एक वर्ष में ही बन पड़ेगा, जिसे पिछली सफलता की तुलना में पाँच गुनी अधिक तीव्र गति से चलने वाली प्रगति कहा जा सके। युग संधि के शेष अगले वर्षों में ऐसी ही सहकारिता का परिचय देते हुए हम उस लक्ष्य तक पहुँच सकेंगे, जिसमें मनुष्य में देवत्व के उदय और धरती पर स्वर्ग के अवतरण की संभावना का प्रतिपादन किया गया है।

एक से पाँच, पाँच से पच्चीस वाला विस्तार क्रम रखा जा सकेगा, तो कुछ ही छलाँगों में हम मत्स्यावतार का उपक्रम अपनाने वाले, सच्चे अर्थों में युग साधक बन सकते हैं। नव सृजन के क्षेत्र में मिलजुलकर वह चमत्कार कर दिखा सकते हैं, जिसे सुनने में तो सर्वसाधारण रुचि लेते हैं, पर व्यवहार में प्रत्यक्ष बन पड़ने की बात को संदेह एवं असमंजस जैसा ही कुछ

मानते हैं।

उपरोक्त निर्धारण के अनुसार वर्तमान सदस्य यदि चार नए सदस्य बना लेंगे, तो अपने प्रज्ञा मंडल के एक समर्थ सूत्र संचालक बन जाएँगे। उनमें से पाँच–पाँच अनुपाठक मिलाकर पच्चीस का एक समुदाय बन जाएगा और उसकी संयुक्त शक्ति से ऐसा कुछ बन पड़ने की संभावना उग सकती है, जिसे २४ अवतारों, २४ देवताओं, २४ ऋषियों, २४ देवियों ने मिल–जुलकर एक समग्र अध्यात्म विज्ञान की संरचना की थी और नर–वानरों के समूह को मानवी गरिमा से सुसंपन्न ईश्वर का राजकुमार बनाने का करिश्मा दिखाया था। हमें अपनी २५ की छोटी मंडली को भी ऐसा ही मानकर चलना चाहिए कि बंदर जैसी दिख पड़ने पर भी, हनुमान जैसे पराक्रम में समर्थ हो सकेगी।

समझदारी शंका में नहीं–सहयोग में है

यहाँ किसी को भी चंदन में दुर्गंध ढूँढ निकालने का भ्रम जंजाल नहीं सँजोना चाहिए। यह खुले पन्ने हैं कि अखंड ज्योति का मूल्य मात्र कागज, छपाई और पोस्टेज भर का है। किसी का पारिश्रमिक तक इसके मूल्य में नहीं जोड़ा जाता। ऐसी दशा में नफा कमाने जैसी बात तो किसी को स्वप्न में भी नहीं सोचनी चाहिए। मिशन स्तर की भावनाएँ यदि इस तंत्र के साथ जुड़ी हुई न होतीं, उसे व्यवसाय भर समझा और किया गया होता, तो निश्चय ही पाठकों में से किसी पर भी आदर्शवादी छाप पड़ने का सुयोग ही नहीं बन पड़ता। कहने वालों को तो क्या किया जाए? इनके मुँह में पायरिया, पेट में अल्सर और आहार में लहसुन घुसा होता है। इनकी साँस में दुर्गंध ही उठती रहेगी। सदाशयता पर भी कुचक्र रचने जैसा आरोप लगाने वाले इस संसार में कम नहीं हैं। ईसाई मिशन, साम्यवादी प्रचारक, गीता प्रेस जैसे प्रकाशन प्रत्यक्ष हैं, जो नफा नहीं कमाते। युग साहित्य का प्रकाशन भी ऐसा ही समझा जा सकता है। अखंड ज्योति का

आर्थिक ढाँचा तो आरंभ से ही ऐसा रहा है और अंत तक ऐसा ही रहेगा।

सज्जनों का संगठन ही दैवी शक्ति के रूप में प्रकट होता और लक्ष्य पर ब्रह्मास्त्र की तरह टूटता है। अखंड ज्योति परिजनों का संगठन क्रम, यों साप्ताहिक सत्संग के रूप में भी चलता है। पारस्परिक घनिष्ठता बढ़ाने पर भी मिलजुलकर कुछ ठोस काम करने का अवसर मिलता है। जहाँ नवीनता न रहने पर उदासी आने लगे, वहाँ सम्मिलित शक्ति उत्पन्न करने का दूसरा उपाय यह है कि हर सदस्य का जन्मदिवस मनाया जाए और आदर्शवादी प्रतिपादन के क्रियान्वयन का उपक्रम चलाया जाता रहे। इस अवसर पर अभ्यस्त बुराइयों में से कोई छोड़ने और एक नई सत्प्रवृत्ति बढ़ाने का अवलंबन भी अपनाया जा सकता है।

जन्मदिन मनाने में छोटा दीपयज्ञ, सामूहिक गायत्री पाठ, सहगान कीर्तन के उपरांत, जिसका जन्मदिन मनाया जा रहा है, उसके ओजस्, तेजस् और वर्चस् के अभिवर्धन की कामना की जा सकती है। अभिनंदन–आशीर्वाद का क्रम चल सकता है और यथासंभव पुष्प–वर्षा या उसके स्थान पर पीले चावलों का प्रयोग हो सकता है। बस हो गई जन्मदिवस मनाने की प्रक्रिया। यदि अपने संगठन में पाँच सदस्य और पच्चीस अनुपाठक हों, तो इन सब को इकट्ठा करने पर एक अन्य समारोह हो सकता है। आतिथ्य सौंफ–सुपाड़ी तक सीमित रहे, तो गरीब–अमीर किसी को भी विषमताजन्य संकोच का अनुभव नहीं करना पड़ेगा। साल भर में पच्चीस आयोजन हो जाया करेंगे और उनकी एकरस विचारधारा, घनिष्ठता एवं सत्प्रवृत्ति संवर्धन की प्रवृत्ति के समन्वय से अनेक रचनात्मक कार्य किसी न किसी रूप में चलते रह सकते हैं।

हर सदस्य नियमित रूप से यथासंभव समयदान और अंशदान निकालता रहे, तो उस संचित राशि के सहारे वे

रचनात्मक क्रिया–कलाप सरलतापूर्वक चलते रह सकते हैं, जिनके उत्पादन–अभिवर्धन की इन दिनों नितांत आवश्यकता है।

भाव शून्यों के लिए तो झपटना–हड़पना ही एकमात्र अभ्यास में रहता है, पर जिनमें भाव–संवेदनाएँ जीवित हैं, उनके लिए तनिक भी कठिन नहीं होना चाहिए कि चौबीस घंटों में से न्यूनतम दो घंटे निकालते रह सकें। महीने में एक दिन की कमाई खर्चने में दम घुटता हो, तो कम से कम पचास पैसे रोज का अशंदान तो किसी जीवित व्यक्ति के लिए तनिक भी भारी नहीं पड़ना चाहिए। इस राशि से, नव सृजन के उद्देश्य से, इन दिनों निरंतर प्रकाशित होती रहने वाली वे पुस्तकें मँगाई जाती रह सकती हैं, जिनका मूल्य तो सस्तेपन की चरम सीमा जैसा रखा गया है, परंतु जिनकी हर पंक्ति में वह प्राण–ऊर्जा लहराती और लपलपाती देखी जा सकती है, जो सड़न भरी मान्यताओं को बुहार कर किसी कोने में फेंक दे और उसके स्थान पर उस देवत्व की प्रतिष्ठापना कर दे, जिसे अमृत, पारस और कल्पवृक्ष की उपमा देने में अत्युक्ति जैसा कुछ भी ढूँढे नहीं मिल सकता।

शांतिकुंज का अभिनव प्रकाशन कम मूल्य की ऐसी पुस्तिकाओं के रूप में इन दिनों निरंतर हो रहा है, जो युग परिवर्तन की पृष्ठभूमि बनाने में असाधारण योगदान दे सकें। अंशदान के पैसों से यह साहित्य मँगाने और समयदान को, उसे जन–जन को पढ़ाने या सुनाने में लगाया जा सकता है। अखंड ज्योति परिजनों से इन्हीं दिनों उपरोक्त छोटे कार्यक्रमों को संपन्न करने के लिए अनुरोध एवं आग्रह किया जा रहा है। इस अभियान के अंतर्गत विस्तार का जो दायित्व हर परिजन पर आया है, उसे उल्लास–पूर्वक निभाने में हममें से कोई भी पीछे न रहेगा, ऐसी आशा–अपेक्षा की गई है।

वह जिसकी उपेक्षा नहीं ही करें

छोटे और थोड़े काम तो मनुष्य अपने हाथ–पैरों के सहारे

ही कर लेता है, पर जब बड़े काम करने की आवश्यकता पड़ती है, तो बिजली, भाप आदि के माध्यम से ऊर्जा उत्पन्न करनी पड़ती है। चेतना क्षेत्र की इसी ऊर्जा को भगवान कहते हैं। समुद्र पार करने के लिए जलयान और आकाश में सैर करने के लिए वायुयान की जरूरत पड़ती है। मात्र शरीर सत्ता उसकी बड़ी महत्वाकाँक्षाएँ पूरी कर सकने में असमर्थ ही रहती हैं।

आत्मा और परमात्मा के मिलन पर, साधारण परिस्थितियों वाले व्यक्ति भी देवमानवों की भूमिका निभाने लगते हैं। शरीर धारी तो एक और एक मिलकर दो ही होते हैं, पर जीव और ब्रह्म की दो इकाइयाँ समता अपना लेती हैं, तब उनकी स्थिति ११ जैसी होने में देर नहीं लगती। युग परिवर्तन में देवोपम भूमिका निभाने के लिए व्यक्ति को समर्थ सत्ता का आश्रय लेना ही चाहिए। सुदामा, नरसी, विभीषण, जामवंत आदि की निजी क्षमताएँ स्वल्प थीं, पर वे किसी बड़े का सहयोग प्राप्त कर लेने पर अतुलित बलधारी बन सकने में समर्थ हो गए।

बच्चे, हाथी–घोड़े, गाय आदि की कल्पना मानस में जमाने के लिए, उनके खिलौने तथा चित्र देखने भर से काम चला लेते हैं। खिलौने प्राप्त करने में कुछ बड़ा खर्च भी नहीं करना पड़ता और उनके भरण पोषण का दायित्व भी नहीं, किंतु इन्हीं प्राणियों को यदि असली रूप में पाना–पालना हो, तो भारी–भरकम कीमत चुकाना और नित्य प्रति घास, पानी, छाया आदि का प्रबंध भी करना पड़ता है। जीवंत और वास्तविक भगवान को पाने के लिए भी कुछ बड़ा साहस अपनाना और उपयुक्त जुटाना पड़ता है। प्रतिभाओं के सम्मुख उपहार रखने और गुणगान करने से उस सत्ता की स्मृति तो उभरती है, पर उसके अनुदान–वरदान प्राप्त कर सकना संभव नहीं होता। बच्चों के खिलौने वाली गाय न तो दूध देती है, न ही बछड़ा।

पूजा–उपासना की परिचर्या अति सरल है। उसे सामान्य क्रिया–कलापों से कहीं अधिक सरलतापूर्वक संपन्न किया जा

सकता है, किंतु असली भगवान का मिलन तो तत्काल भारी हलचल और उठक–पटक आरंभ कर देता है। पति की संपदा और सत्ता पर अधिकार करने के लिए पत्नी को पितृ गृह छोड़ना और ससुराल में समर्पित भाव से रहना पड़ता है। भगवान मिलन को यदि अत्यंत सशक्त बनाने की आवश्यकता पड़े, तो साथ ही इसी सिलसिले में यह भी गिरह बाँध लेनी चाहिए कि पैसा और वासना के लिए खपती रहने वाली जीवनचर्या से ऊँचा उठकर, अपने को ऐसा कुछ बनाना पड़ेगा, जिससे उत्कृष्टता और उदारता के दोनों तत्व प्रत्यक्ष परिलक्षित होते, उभरते, उफनते दृष्टिगोचर होने लगें।

युग सृजन के इंजीनियरों को सामान्य जनों की तुलना में अधिक योग्यता अर्जित करनी पड़ती है और बड़ी जिम्मेदारी भी उठानी पड़ती है। पर्वतारोहियों को उच्च शिखर तक चढ़ने का श्रेय पाने के लिए, दुस्साहस कर सकने जैसा मानस बनाना पड़ता है। अपंग और आलसी तो मात्र ऐसी कल्पना ही करते रहते हैं।

ईश चेतना से जुड़ें

ईश्वर का सबसे निकटवर्ती और सही स्थान अपना अंतःकरण है। बाहर खोजने से तो दृश्यमान वस्तुएँ, जो जड़ पदार्थों की बनी हैं, वही मिलेंगी। देवालयों और तीर्थों में उनकी झलक झाँकी ही मिल सकती है, पर यदि वस्तुतः उसे पाना हो, तो कस्तूरी मृग की तरह जहाँ–तहाँ भटकने की अपेक्षा यह उचित है कि अपनी नाभि को सूँघा जाए, अंतःकरण टटोला जाए।

ईश्वर के मिलन और बिछुड़न की स्थिति को तुरंत परखा और प्रत्यक्ष देखा जा सकता है। दैवी सत्ता किसी पर अनुग्रह करती है, तो उसके मानस एवं क्रिया–कलाप में अद्भुत–आश्चर्यजनक परिवर्तन करती है। उन्हें क्षुद्रता की कीचड़ से उबार कर, महानता की साज सज्जा से सजाती है। माता अपने

शिशु को तभी गोदी में उठाती है, जब उसकी मल मूत्र से सनी स्थिति को धोकर साफ कर लेती है। यही बात शत–प्रतिशत भगवद्भक्ति के संबंध में भी है। आग के साथ यदि ईंधन घनिष्ठता स्थापित करेगा, तो उसका समूचा स्वरूप अग्निमय हुए बिना नहीं रहता। नरकीटकों की तुलना में नर–नारायणों का दृष्टिकोण ही नहीं, क्रिया–कलाप भी कुछ ऐसा हो जाता है, जो औरों जैसे नहीं, वरन् अपने आप में कुछ विचित्र–विलक्षण, किंतु उच्चस्तरीय दीख पड़ने लगता है। "लोहा पारस को छूकर सोना बनता है", की उक्ति वस्तुतः आत्मा को परमात्मा के साथ जुड़ जाने पर ही सार्थक दृष्टिगोचर होती है।

परमात्मा जब भी आत्मा से मिलेगा, तो अपनी संवेदनाएँ शरणागत पर उड़ेले बिना नहीं रहेगा। उसका कथन–परामर्श, मार्ग–दर्शन भली प्रकार सुनाई देने लगता है। आदान–प्रदान में अनुशासन भी जुड़ा रहता है। कुछ खरीदना हो, तो उसका मूल्य भी चुकाया जाना पड़ता है। भगवान का स्मरण करते ही उसके परामर्श रूपी अनुदानों का प्रवाह आने लगता है। जागो और जगाओ, उठो और उठाओ, चलो और चलाओ, उभरो और उभारो, जियो और जीने दो, उछलो और उछालो, जैसे दुहरे आदेशों की झड़ी लग जाती है और उन्हें पूरा किए बिना किसी प्रकार, किसी क्षण चैन नहीं पड़ता। ऐसी ही स्थिति में रहते देखे जाते हैं, वे भगवद् भक्त, जिन्हें तात्कालिक आदेश के रूप में युग पुरुष, युग देवता या युग सृजेता कहलाने का श्रेय एवं संतोष मिल सकता है। अच्छा हो, उस उपलब्धि को स्वीकार करने से इंकार न किया जाए। द्वार पर खड़े हुए सौभाग्य को ठोकर मार कर वापस न लौटाया जाए।

समय की कसौटी पर खरे सिद्ध होने के लिए इन दिनों एक ही तैयारी में जुटना चाहिए कि किस प्रकार लोक मानस को परिष्कृत करने के लिए कटिबद्ध होकर, नियंता का हाथ बँटाया जाए और बदले में वैसा कुछ पाया जाए, जैसा कि धरती

से स्वर्ग तक छलाँग लगा सकने वालों को तत्काल ही प्राप्त हो सकता है।

थोड़ा ही सही, नियमित करें

साप्ताहिक सत्संगों, जन्मदिवसों, दीपयज्ञों एवं पर्व–आयोजनों के माध्यम से अधिकाधिक लोगों को एकत्रित करके, उनके अंतराल में युग चेतना का आलोक जगमगाते रहने की बात अनेक बार सुझाई जाती रही है। बड़े पर्वों पर बड़े आयोजन करना भी उत्साही जनों के लिए कुछ कठिन काम नहीं है। झोला पुस्तकालयों की रीति–नीति अपनाकर हर शिक्षित को घर बैठे बिना मूल्य युग साहित्य पहुँचाते और वापस लेते रहने का एक छोटा किंतु सशक्त आधार अपनाने के लिएभी संकेत, अनुरोध और आग्रह किया जाता रहा है। बिना पढ़े लोग भी इसे सुनकर नवयुग का, नवजीवन जैसा संदेश प्राप्त कर सकते हैं।

धर्म तंत्र से लोग शिक्षण की विधा में, दीपयज्ञ माध्यम को समय के नितांत अनुरूप माना जा सकता है। अनेक विधि–विधानों से जुड़े, मंत्र विधा वाले–खर्चीले कर्मकांडों को पूरा करने के लिए बड़ी राशि चाहिए और साथ ही उनमें नियोजित लोगों का सहयोग पाने के लिए प्रचुर मात्रा में दक्षिणा का प्रबंध करना भी अनिवार्य हो जाता है। दीपयज्ञों की विधि थोड़े ही समय में संपन्न हो जाती है। उसमें खर्च भी नहीं के बराबर रहता है। आयोजन कोई भी साधारण शिक्षित संपन्न करा सकता है। इस विधा को सभी शुभ–अवसरों पर संपन्न किया जाता रह सकता है और जनसाधारण को धर्म लाभ का आश्वासन देकर वह शिक्षण दिया जा सकता है, जिसे युग चेतना का नाम दिया गया है। सहगान कीर्तन दीपयज्ञों के साथ जुड़ा है, जिसमें गायन करते हुए लोग झूमने लगते हैं। भाषण के लिए इतना ही पर्याप्त है कि इन्हीं दिनों शांतिकुंज से जो अभिनव उद्‌बोधन छापा जा रहा है, उसमें से उपस्थित जनों

के स्तर को देखते हुए कोई अंश छाँट कर पढ़कर सुनाया जाए। यह युग गीता कथा है, जिसे पोथी के माध्यम से सुनाते रहने में वक्ता की गौरव–गरिमा घटती नहीं, वरन बढ़ती ही है।

उपरोक्त उपक्रमों के साथ–साथ एक बड़ा कदम भी है, जिसे अपने अहंकार में थोड़ी कटौती कर लेने वाला कोई भी व्यक्ति भली प्रकार चलाता रह सकता है। यह है–चल प्रज्ञा मंदिर का निर्माण और संचालन। इसी को ज्ञानरथ के नाम से जाना जाता है। पिछले दिनों पाँच हजार अचल प्रज्ञा पीठों का निर्माण हो चुका है। अब युग संधि के दूसरे वर्ष में प्रज्ञा परिजनों को २४ हजार प्रज्ञा मंदिर बनाने का दायित्व सौंपा गया है। अचल देवालयों में तो समीपवर्ती लोग ही पहुँच पाते हैं। उनके लिए पुजारी की, पूजन सामग्री की, इमारत के साज–सँभाल की, नित्य आवश्यकता पड़ती है। निर्माण कार्यों में हजारों–लाखों की राशि जुटाने की आवश्यकता पड़ती है। समुचित साज–सँभाल न होने पर निर्माताओं की बदनामी भी होती है और देवता की नाराजगी भी, किंतु चल प्रज्ञा मंदिरों के निर्माण–संचालन में उपरोक्त झंझटों में से एक भी नहीं पड़ती। साथ ही लाभ की दृष्टि से उसकी उपयोगिता असंख्य गुनी बड़ी है। घर–घर अलख जगाने, हर गली कूँचे में नुक्कड़ सभाएँ सँजोते रहने, अपरिचितों को परिचित कराने और सशक्त प्राण ऊर्जा जन–जन तक पहुँचाने के बहुमूल्य पुण्य–प्रयोजन सहज़ ही बन पड़ते हैं।

चार पहियों वाला, आकर्षक साज–सज्जा वाला, युग साहित्य से भरा पूरा यह युग मंदिर प्रायः ४००० रु की लागत में बन जाता है। ३००० रुपयों में ढाँचा लाउड़स्पीकर, टेप रिकार्डर आदि तथा १००० रु. में साहित्य की व्यवस्था बन जाती है। इसे घर के एक कोने में आसानी से रखा जा सकता है और अपने दो घंटे का जो समयदान दिया गया था उसमें इसे हाट–बाजार, पार्क, मंदिर, घाट, दफ्तर, कारखाने आदि में

काम करने वालों तक पहुँचाया जा सकता है। दो दिन का समयदान इकट्ठा करके, तीसरे दिन चार घंटे या साप्ताहिक छुट्टी वाला पूरा दिन सुविधानुसार इसके संचालन में लगाया जा सकता है।

पिछले दिनों ज्ञान रथों का संचालन पुस्तक–विक्रय की बात को प्रधानता देते हुए किया जाता रहा है। इसमें चलाने वालों को अपनी हेठी लगती थी और संकोच भी होता था। अब उस प्रचलन को पूरी तरह बदल दिया गया है। इन दिनों ''ज्ञानरथ'' विशुद्ध चल–पुस्तकालय के रूप में चलाए जा रहे हैं। विचारशीलों को मुफ्त में पढ़ने देने और अगली बार वापस लेने की, स्वयं पहुँचने वाली बात वैसी ही है, जैसी कि सदावर्त चलाने, प्याऊ द्वारा जल पिलाने की, घर–घर प्रसाद बाँटने के लिए गर्व–गौरव के साथ की जाने की। किसी को कभी कोई पुस्तकें खरीदने की इच्छा हो, तो उस समय उसे पर्ची में नोट कर लेना चाहिए। ज्ञानरथ संचालन के साथ पुस्तक बिक्री की बात हटा देने पर, अब वह समूचा उपक्रम मात्र भगवान का रथ घुमाने और घर बैठों को पुण्य लाभ कराने जैसा है। इसे कोई तथाकथित बड़ा आदमी भी करने लगे, तो उससे मान और गौरव रत्ती भर भी घटने वाला नहीं है, वरन् बड़प्पन में धर्म–धारणा का उदार प्रवेश होने के कारण गरिमा में चार–चाँद ही लगेंगे। लाउडस्पीकर, टेपरिकार्डर के सम्मिलन से हर दिन नुक्कड़ सभाओं की धूम मची रह सकती है। संगीत और प्रवचन से हर दिन सैकड़ों हजारों को परिचित, अवगत कराना ही नहीं अनुप्राणित भी किया जा सकता है। उपयोगिता की दृष्टि से यह 'ज्ञान यज्ञ' अन्य परमार्थ प्रयोजनों की तुलना में किसी प्रकार कम नहीं, अधिक ही माना जा सकता है।

बैटरी हर दिन चार्ज करानी पड़ सकती है। समय–समय पर नए टेप भी खरीदने पड़ सकते हैं। पिछली पुस्तकें पाठकों

द्वारा पढ़ लिए जाने पर नई मँगाते रहने का सिलसिला भी जारी रहेगा। इसकी अर्थ–व्यवस्था करने में एक रुपया प्रतिदिन का प्रबंध करना कुछ कठिन नहीं है। इतना तो मध्यवृत्ति का कोई भी व्यक्ति वहन कर सकता है। नितांत असमर्थ होने पर, एक से पाँच बनाने की प्रतिज्ञा पूरी करने के लिए जो चार साथी और बनाए थे, उनके घरों में ''ज्ञानघट'' रखने की, नियमित अंशदान वाली प्रक्रिया का आश्रय भी लिया जा सकता है। अपने पाँच की उदारता यदि उभारी जा सके, तो महीने में एक दिन की कमाई भी मिल सकती है और स्थानीय प्रज्ञा मंडल के साथ जुड़ी हुई समस्त गतिविधियों का सूत्र–संचालन भली प्रकार होता रह सकता है। नितांत कृपणता और उपेक्षा आड़े आ रही हो, तो बात दूसरी है, अन्यथा श्रद्धा के बीजांकुर रहते, इतना नगण्य समयदान और अंशदान इन सभी के द्वारा बिना किसी बहानेबाजी के प्रस्तुत किया जा सकता है।

धर्म, भिखारियों का पेशा नहीं है। लोक–परलोक को समृद्ध, सुसंस्कृत बनाने वाली शक्ति को अपनाने और उससे लाभान्वित होने में उदारचेत्ता ही सफल हो सकते हैं। धर्म–धारणा और सेवा–साधना के लिए कुछ न कुछ खर्च तो करना ही पड़ेगा। भले ही वह सुदामा की तंदुल पोटली के समान हो या किसान के बीज बोने, श्रम और खाद–पानी जुटाने जैसा। जो माला घुमाने और अक्षत चढ़ाने भर से उपासना की सर्वांगपूर्णता मान लेते हैं और जमीन से आसमान जितनी मनोकामनाएँ पूरी करने के लिए लार टपकाते रहते हैं, उनके बारे में यही कहा जा सकता है कि उनका धर्मतंत्र से और दिव्य सत्ता से अभी दूर का संबंध भी नहीं जुड़ा है। मात्र बालकों जैसी परलोक की कल्पना करने वाले ही शेखचिल्लियों वाले लोक में रहते हैं। यह क्षेत्र वस्तुतः दे सकने वाली उमंगों से भरे–पुरे शूरवीरों का है। न जाने कृपण–कंजूसों की भूमिका निभाते हुए लोग, अपने लिए, महामानवों को प्राप्त होने वाली उपलब्धियों की कल्पना

क्यों करते रहते हैं?

पाँच से पच्चीस का विकास क्रम अपनाने की अनिवार्यता के लिए युग पुरुषों जैसा विस्तार क्रम अपनाने पर पूरा जोर दिया जाता रहा है। ज्ञानरथ चल–प्रज्ञा मंदिर के सहारे यह प्रयोजन अधिक द्रुतगामी गति पकड़ सकता है। घर–घर अलख जगाने और जन–जन को अमृतोपम प्रसाद बाँटते रहने में युगधर्म का निर्वाह भी होता है और धर्म–धारणा, सेवा–साधना के रूप में वह आध्यात्मिक कमाई भी होती है, जिसके बल पर अंतःकरण में संतोष और जन–समुदाय में भाव–भरा सम्मान अर्जित किया जा सके।

प्राण–चेतना प्रखर बनाए रखें

अंगारे पर बार–बार राख जम जाती है और उसे प्रज्ज्वलित रखने के लिए बार–बार उसे हटाना पड़ता है। शरीर को स्नान और कपड़े को धोने की बार–बार आवश्यकता पड़ती है। बैटरी चार्ज करने के लिए उसे बार–बार विद्युत प्रवाह से जोड़ना पड़ता है। ठीक इसी स्तर का एक प्रसंग यह भी है कि प्रज्ञा–परिजन शांतिकुंज की–गंगोत्री यात्रा, वर्ष में एक बार नहीं, तो दो वर्ष में एक बार तो कर ही लेने की योजना बनाते रहें। युग संधि के शेष वर्षों में यह उपक्रम नियमित चलता रहे, तो खर्च हुए समय और पैसे की तुलना में कुछ अधिक ही मिल सकेगा। भले ही वह चेतना क्षेत्र अनुदान चर्म चक्षुओं से न दीख पड़े।

सन् २००० तक युग सृजन के प्राणवान परिजनों, अखंड ज्योति, युग निर्माण, युग शक्ति गायत्री के पाठकों–अनुपाठकों के लिए समूची अवधि में हर माह ९–९ दिन के सत्र शांतिकुंज में अनवरत रूप से चलते रहेंगे। ये सत्र लोक व्यवहार, भावी जीवन संबंधी परामर्श परक होंगे। परस्पर विचार–विनिमय का क्रम भी चलेगा। प्रयास यह रहेगा कि युग संधि के वर्षों में प्रायः एक करोड़ से अधिक व्यक्तियों में प्राण फूँकते रहने का उपक्रम

चलता रहे। इसी दृष्टि से आश्रम परिकर में आवास व्यवस्था हेतु नए कमरे भी बनाए गए हैं। थोड़ी हेर–फेर करके और अधिक व्यक्तियों के निवास की व्यवस्था बनाई जा रही है। इन सत्रों में युग संधि की विशेष साधना, प्राण–प्रेरणा के अभिनव संचार का क्रम चलेगा। अतः किसी भी परिजन को इस सुयोग से वंचित नहीं रहना चाहिए एवं समय निकाल कर कम से कम वर्ष में एक बार बैटरी चार्ज कराने आना ही चाहिए। ये सत्र हर माह १ से ९, ११ से १९ एवं २१ से २९ तारीखों में चलते रहेंगे।

नेवले और साँप की लड़ाई में जब नेवला थकता और विष दंशन से उद्विग्न होता है, तो मुड़ कर किसी जड़ी बूटी को खाने चला जाता है। नई शक्ति सँजोकर फिर लड़ाई आरंभ कर देता और शत्रु को परास्त करके रहता है। पौधों को बार–बार पानी देना पड़ता है। वह न मिले, तो वे सूख जाएँगे।

शांतिकुंज के नौ दिवसीय सत्रों में उन्हीं को बुलाया गया है, जो मिशन के साथ घनिष्ठतापूर्वक जुड़ चुके हैं। घुमक्कड़, अशिक्षित, रोगी, जराजीर्ण, छोटे बालकों के लिए धर्मशालाओं में ठहरना ही ठीक पड़ता है। अन्यथा वे शिक्षार्थियों को बिना कुछ पाए लौटाने के लिए बाधित करेंगे, आश्रम–व्यवस्था गड़बड़ाएँगे और उन लोगों की राह रोकेंगे, जो सत्रों में सम्मिलित होने के लिए अपनी पारी की उत्सुकतापूर्वक प्रतीक्षा कर रहे थे।

पाँच दिवसीय सत्रों में सम्मिलित होने वालों को अपनी शारीरिक, मानसिक स्थिति का, अब तक की जीवनचर्या का विवरण लिखना चाहिए और साथ ही यह अवश्य लिखना चाहिए कि इन दिनों परिवार के नियमित सदस्यों की भाँति सम्मिलित

हैं या नहीं। असंबद्ध लोग पहले मिशन के साथ सक्रिय रूप से जुड़ें, बाद में सत्रों में सम्मिलित होने की बात सोचें। आरंभिक कक्षाएँ अपनी स्थानीय पाठशाला में पूरी करें। कालेज स्तर की योग्यता प्राप्त करने के लिए यहाँ आएँ।

सज्जनों का, सत्प्रवृत्तियों का विस्तार ही नवयुग के अवतरण का प्रधान लक्षण है। दुर्जनों की दुर्बुद्धि ने ही समय के साथ अगणित समस्याएँ जोड़ी हैं। उनका निवारण और निराकरण संयमशील उदारचेत्ता ही अपने विस्तार–पुरुषार्थ से संभव कर सकते हैं। उन्हीं का उत्पादन, अभिवर्धन और प्रशिक्षण नवसृजन प्रक्रिया का प्रमुख और प्रधान अंग है। उसी को संभव बनाने, संपन्न करने के लिए हम सबको समुद्र सेतु बाँधने वाले वानरों की तरह, गोवर्धन उठाने में सहायक बने ग्वाल–बालों की तरह साहस सँजोना चाहिए, भले ही योग्यता, संपन्नता एवं सुविधा का अभाव ही क्यों न प्रतीत होता हो।

अपने समय का प्रज्ञावतार ही प्राचीनकाल का मत्स्यावतार है। उसकी, लगन और ललक निरंतर विस्तार पर ही केंद्रित रही है। आज भी हममें से प्रत्येक को एक से अनेक बनने का व्रत लेना चाहिए और उसे पूरा करने के लिए, जिसकी जितनी श्रद्धा उमगे, उससे कम पुरुषार्थ का परिचय नहीं ही देना चाहिए। प्रज्ञावतार के लक्ष्य को पूरा करने में कुछ ऐसा कर गुजरना चाहिए, जो अनुकरणीय और अभिनंदनीय कहकर सराहा जा सके।

■

मुद्रक : युग निर्माण योजना प्रेस, मथुरा